अध्याय

5

राजस्थानी चित्रकला एवं लोककलाएं

चित्रकला –राजस्थान की चित्रकला का क्षेत्र अत्यन्त समृद्ध है। यहाँ चित्रकला की न केवल विविध शैलियां प्रचलित थीं वरन ये चित्र कागजों, कपड़ों, हवेलियों, मंदिरों व महलों की दीवारों पर अर्थात् भिन्न–भिन्न कैनवास पर सजे हुए मिलते हैं।

राजस्थान में आलनिया, दर्रा (कोटा), बैराठ (जयपुर) तथा दर (भरतपुर) नामक स्थानों से शैलाश्रयों (गुफाओं) में आदिमानव द्वारा बनाये रेखांकन प्रदेश की प्रारम्भिक चित्रण परम्परा को दर्शाते हैं। वी.एस. वाकणकर ने राजस्थान में 1953 में कोटा में चम्बल घाटी और दर्रा, झालावाड़ के निकट कालीसिंध घाटी और अरावली में माउंट आबू तथा ईडर में चित्रित शैलाश्रयों की खोज की। राजस्थान में सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध चित्रित ग्रंथ 1060 ई. में रचित ओध निर्युक्ति वृत्ति एवं दस वैकालिका सूत्र चूर्णि जैसलमेर भण्डार में मिले हैं।

विशुद्ध राजस्थानी चित्रकला का जन्म हम 1500 ई. के आस–पास मान सकते हैं। राजस्थानी चित्रकला की जन्मभूमि मेदपाट (मेवाड़) है, जो अजंता चित्रशैली से पूर्णतया प्रभावित है। राजस्थानी चित्रकला पर प्रारम्भ में जैन शैली, गुजरात शैली और अपभ्रंश शैली का प्रभाव था, किन्तु बाद में यह मुगल चित्रकला से प्रभावित हुई।

राजस्थानी चित्रकला का सबसे पहला वैज्ञानिक विभाजन आनन्द कुमार स्वामी ने राजपूत पेंटिंग्स नामक पुस्तक में सन् 1916 में प्रस्तुत किया। कुमार स्वामी, ओ.सी.गांगुली तथा हैवेल ने इसे 'राजपूत चित्रकला' कहा है। डब्ल्यू. एच. ब्राउन ने भी अपने ग्रंथ इण्डियन पेंटिंग्स में इस प्रदेश की चित्रकला को 'राजपूत कला' नाम दिया है। रायकृष्णदास ने इन मतों का खण्डन कर इसे 'राजस्थानी चित्रकला' नाम दिया। राजस्थान की चित्रकला की विभिन्न शैलियों पर अनेकों विद्वानों ने पुस्तकें प्रकाशित कर इसके प्रारूप को स्थापित करने में सहयोग दिया है। जिनमें मेवाड़ पर सर्वश्री डॉ. मोतीचन्द्र, श्रीधर अंधारे, डॉ. आर.के. वशिष्ठ एवं किशनगढ़ पर श्री एरिक डिकिन्सन एवं डॉ. फैयाजअली, बूंदी–कोटा पर सर्वश्री प्रमोदचन्द्र, डब्ल्यू. जी. आर्चर एवं महाराजा ब्रजेन्द्रसिंह कोटा के नाम प्रमुख हैं।

राजस्थानी चित्रकला की विशेषताएं

1. लोक जीवन से जुड़ाव, भाव प्रवणता, विषय–वस्तु की विविधता, विभिन्न रंगों का संयोजन, प्राकृतिक परिवेश, देश काल से अनुरूपता आदि विशेषताओं के आधार पर राजस्थानी चित्रकला की विशिष्ट पहचान है।

2. धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों की चित्रकला में लोक जीवन की भावनाओं की बहुलता, भक्ति और श्रृंगार का सजीव चित्रण तथा चटकीले व चमकदार रंगों का संयोजन विशेष रूप से दिखाई देता है।

3. राजस्थान की चित्रकला यहाँ के महलों, किलों, मंदिरों और हवेलियों में अधिक देखी जा सकती है।

4. राजस्थानी चित्रकारों ने विभिन्न ऋतुओं का श्रृंगारिक चित्रण कर उनके मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अंकन किया है।

5. प्राकृतिक सौंदर्य के साथ–साथ नारी सौंदर्य का सजीव चित्रण राजस्थानी चित्रकला को एक अलग पहचान देता है।

6. राजस्थानी चित्रकला राजा–महाराजाओं, राजपुत्रों व सामन्तों के संरक्षण में फूली–फली है।

राजस्थानी चित्रकला की शैलियों का वर्गीकरण

राजस्थानी चित्रकला की शैलियों को भौगोलिक व सांस्कृतिक आधार पर चार प्रमुख वर्गों एवं अनेक उपवर्गों में बांटा गया है, जो हैं :–

1. मेवाड़ शैली : चावंड शैली, उदयपुर शैली, नाथद्वारा शैली, देवगढ़ उपशैली, सावर उपशैली, शाहपुरा उपशैली तथा बनेड़ा, बागौर, बेगूँ, केलवा आदि ठिकाणों की कला।

2. मारवाड़ शैली : जोधपुर शैली, बीकानेर शैली, किशनगढ़ शैली, अजमेर शैली, नागौर शैली, सिरोही शैली, जैसलमेर शैली तथा घाणेराव, रियाँ, भिणाय, जूनियाँ आदि ठिकाणा कला।

3. हाड़ौती शैली : बूंदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ उपशैली।

4. ढूंढाड़ शैली : आमेर शैली, जयपुर शैली, शेखावाटी शैली, अलवर शैली, उणियारा उपशैली तथा झिलाय, ईसरदा, शाहपुरा, सामोद आदि ठिकाणा कला।

राजस्थानी चित्रकला

1. मेवाड़ शैली

राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भिक और मौलिक रूप मेवाड़ शैली में मिलता है। मेवाड़ शैली के अंतर्गत पोथी ग्रंथों का अधिक चित्रण हुआ है। 1260 ई. का श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि' नामक चित्रित ग्रन्थ इस शैली का प्रथम उदाहरण है जो तेजसिंह के राज्यकाल में चित्रित हुआ।

यही शैली 1423 ई. की देलवाड़ा में लिखी गयी सुपासनाह चरियम् पुस्तक में दिखायी देती है। डगलस बैरेट एवं बेसिल गे ने 'चौरपंचाशिका शैली' का उद्‌गम मेवाड़ में माना है। महाराणा कुंभा का काल कलाओं के उत्थान की दृष्टि से स्वर्णिम युग माना जाता है। उदयसिंह (1535–1572 ई.) के काल

में बने चित्रों में भागवत पुराण का 'परिजात अवतरण' (1540 ई.) मेवाड़ के चित्रकार नानाराम की कृति है। महाराणा प्रताप के समय छप्पन की पहाड़ियों में स्थित राजधानी चावण्ड में भी चित्रकला का विकास हुआ। इस काल की प्रसिद्ध कृति 'ढोलामारू' (1592 ई.) है जो राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है।

उदयपुर शैली

महाराणा अमरसिंह प्रथम के शासनकाल में चावण्ड चित्रशैली का अधिक विकास हुआ। महाराणा अमरसिंह के समय में 'रागमाला' (1605 ई.) मेवाड़ शैली का प्रमुख ग्रंथ है। इन चित्रों को निसारदीन नामक चित्रकार ने चित्रित किया। मेवाड़ में राणा जगतसिंह प्रथम का काल मेवाड़ की लघु चित्रशैली का स्वर्णकाल कहा जाता है। इस काल में रसिकप्रिया, गीतगोविन्द, भागवत् पुराण एवं रामायण इत्यादि विषयों पर लघु चित्रों का निर्माण हुआ। राणा जगतसिंह कालीन प्रमुख चित्रकार साहबदीन और मनोहर रहे हैं। महाराणा जगतसिंह ने राजमहल में 'चितेरों की ओवरी' नाम से एक चित्रशाला की स्थापना की जिसे 'तस्वीरां रो कारखानों' के नाम से पुकारा गया।

राणा जयसिंह के काल में लघु चित्रों का निर्माण अधिक हुआ। महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के काल में गीतगोविन्द, बिहारी सतसई, सुन्दर शृंगार, मुल्ला दो प्याजा के लतीफे और कलीला–दमना ग्रन्थों पर आधारित चित्र प्रमुख हैं।

मेवाड़ शैली में पुरुषाकृति गठीली मूँछों से युक्त भरे चेहरे, विशाल नयन, खुले हुए अधर, छोटी ग्रीवा तथा छोटा कद, उदयपुरी पगड़ी व लंबा साफा तथा स्त्रियों का चित्रांकन सरलता के भाव से युक्त, मीनाकृत आँखें, सीधी लंबी नाक तथा भरी हुई दोहरी चिबुक, ठिगना कद, लूगड़ी–घाघरे और कंचुकी तथा ठेठ राजस्थानी आभूषणों से सज्जित रहा है। प्रकृति का संतुलित चित्रण मेवाड़ चित्रकला की प्रमुख विशेषता रही है। अधिकतर लाल, पीले, हरे, नीले, सफेद आदि सूचक रंगों का प्रयोग किया गया है।

नाथद्वारा शैली

मेवाड़ शैली का दूसरा प्रमुख दौर नाथद्वारा शैली में दिखाई देता है। नाथद्वारा में पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की भारत प्रसिद्ध प्रमुख पीठ है, जो श्रीनाथजी की भक्ति का प्रमुख केन्द्र होने के कारण मेवाड़ की चित्र परम्परा में नया अध्याय जोड़ता है। यह उदयपुर शैली एवं ब्रजशैली का समन्वित रूप है। नाथद्वारा शैली की मौलिक देन श्रीनाथजी के स्वरूप के पीछे सज्जा के लिए बड़े आकार के कपड़े के पर्दे पर बनाए गए चित्र 'पिछवाईयों' के नाम से जाने गए। 18वीं सदी के इन चित्रों में कृष्ण चरित्र की बहुलता के कारण यशोदा, नन्द, बाल–ग्वाल, गोपियाँ तथा वल्लभ संप्रदाय के संतों का चित्रांकन विशेष रूप से हुआ है। इसमें हरे–पीले रंगों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसकी अन्य विशेषताओं में केन्द्र में श्रीनाथजी की आकृति, गायों का मनोरम दृश्य, आसमान में देवताओं का अंकन, पृष्ठभूमि में सघन वनस्पति, कदली वृक्षों की प्रधानता आदि है।

नाथद्वारा शैली के चित्रकारों में बाबा रामचंद्र के अतिरिक्त नारायण, चतुर्भुज, रामलिंग, चम्पालाल, घासीराम, तुलसीराम आदि के नाम भी प्रसिद्ध हैं। महिला चित्रकारों में कमला एवं इलायची का नाम मिलता है।

देवगढ़ शैली

महाराणा जयसिंह के राज्यकाल में रावत द्वारिकादास चूँडावत ने देवगढ़ ठिकाना 1680 ई. में स्थापित किया, इसके पश्चात् यहीं से देवगढ़ शैली का जन्म हुआ। यहाँ के सामंत 'सौलहवें उमराव' कहलाते थे। देवगढ़ शैली मारवाड़, जयपुर एवं मेवाड़ शैली का समन्वित रूप है। इसे सर्वप्रथम 'डॉ. श्रीधर अंधारे' द्वारा प्रकाश में लाया गया। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में बगता, कँवला प्रथम, कँवला द्वितीय, हरचंद, नंगा, चोखा एवं बैजनाथ हैं। प्राकृतिक परिवेश, शिकार के दृश्य, अन्तःपुर, राजसी ठाठ–बाठ,

श्रृंगार, सवारी आदि इसके प्रमुख विषय रहे हैं। इसमें पीले रंग की बहुलता रही है। इस शैली के भित्ति चित्र 'अजारा की ओवरी', 'मोती महल' आदि में देखने को मिलते हैं।

2. मारवाड़ शैली

मारवाड़ क्षेत्र की चित्रकला का वैभव मूलतः जोधपुर की दरबारी शैली के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु इसके अतिरिक्त जैसलमेर, नागौर एवं अजमेर के कुछ भागों में भी इसका व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है।

तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने सातवीं सदी में मारू देश में चित्रकार श्रृंगधर का उल्लेख किया है, जिसने पश्चिमी भारत में यक्ष शैली को जन्म दिया। इसके प्रारम्भिक चित्रावशेष हमें प्रतिहारकालीन ओध निर्युक्ति वृत्ति में मिलते हैं। यहाँ मारवाड़ी साहित्य के प्रेमाख्यानों पर आधारित चित्रण अधिक हुआ है।

जोधपुर शैली

मारवाड़ में कला एवं संस्कृति को नवीन परिवेश देने का श्रेय 'मालदेव' को जाता है। इस काल की प्रतिनिधि चित्रशैली के उदाहरण हमें 'चौखेलाव महल' तथा चित्रित उत्तराध्ययन सूत्र से प्राप्त होते हैं। सन् 1610 में लिखित एवं चित्रित भागवत मेवाड़ एवं मारवाड़ की अनेक विशेषताओं से युक्त है।

सन् 1623 में कलाकार वीरजी द्वारा पाली के प्रसिद्ध वीर पुरुष विठ्ठलदास चाँपावत के लिए 'रागमाला चित्रावली' चित्रित की गई। लघु–चित्रों में छोटे आकार की इकहरी वसली पर निर्मित ये चित्र शुद्ध राजस्थानी शैली में अंकित हैं।

जोधपुर शैली में एक मोड़ महाराजा जसवन्तसिंह के समय में आया। कृष्ण चरित्र की विविधता और मुगल शैली का प्रभाव इस काल के चित्रों में दिखाई देता है। महाराजा अजीतसिंह के शासन काल में सम्भवतः मारवाड़ शैली के सबसे अधिक सुन्दर एवं प्राणवान चित्र बने। जिनमें सामन्ती संस्कृति का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया। महाराजा अभयसिंह के राज्यकाल में चित्रकार डालचन्द को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। इनके चित्र 'महाराजा अभयसिंह नृत्य देखते हुए' (1725 ई.) मेहरानगढ़ संग्रहालय, जोधपुर एवं कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित देखे जा सकते हैं।

महाराजा मानसिंह (1803–1843 ई.) ने मारवाड़ की चित्रकला को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी महाराजा ने नाथों से सम्बन्धित असंख्य चित्र बनवाये। इस समय के प्रमुख चित्रकारों में अमरदास भाटी, दाना भाटी, शंकरदास, माधोदास, रामसिंह भाटी, शिवदास इत्यादि प्रमुख है। दाना भाटी द्वारा निर्मित चित्रों में मारवाड़ की चित्रण परम्परा का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है।

मारवाड़ (जोधपुर) शैली के विषयों में प्रेमाख्यान प्रधान विषय रहा है। इन प्रेमाख्यानों में ढोला–मरवण, मूमल–महेन्द्रा, रूपमति–बाजबहादुर, कल्याण–रागिनी प्रसिद्ध रहे हैं। जोधपुर शैली के पुरुष लंबे–चौड़े, गठीले बदन के तथा उनके गल–मुच्छ, ऊँची पगड़ी, राजसी वैभव के वस्त्राभूषण और स्त्रियों की वेशभूषा में ठेठ राजस्थानी लहँगा, ओढ़नी और लाल फुंदनों का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है। बादाम–सी आँखें और ऊँची पाग जोधपुर शैली की अपनी निजी देन है। मारवाड़ शैली में लाल, पीले रंग का बाहुल्य है, जो स्थानीय विशेषता है। प्रकृति का चित्रण मारवाड़ के परिवेश के अनुकूल हुआ है। चित्रों में खंजन पक्षी को भी बखूबी दर्शाया गया है।

बीकानेर शैली

बीकानेर शैली का प्रादुर्भाव 16वीं शती के अन्त में माना जाता है। राव रायसिंह के समय चित्रित 'भागवत पुराण' में इस शैली के प्रारंभिक चित्र मिलते हैं। बीकानेर नरेश रायसिंह मुगल कलाकारों की दक्षता से प्रभावित होकर कुछ को अपने साथ ले आये। इनमें उस्ता अली रजा व उस्ता हामिद रुकनुद्दीन

प्रमुख थे। इन्हीं दोनों कलाकारों की कलाकृतियों से चित्रकारिता की बीकानेर शैली का उद्भव हुआ।

यहाँ दो परिवारों का चित्रकला पर विशेष प्रभाव रहा। मथेरण परिवार पारम्परिक जैन मिश्रित राजस्थानी शैली के चित्र बनाने में सिद्धहस्त था। मुगल दरबार से उस्ता परिवार मुगल शैली के चित्र बनाने में कुशल था। इस परिवार ने ऊँट की खाल पर सोने का चित्रण करके 'उस्ता कला' विकसित की। अकबर ने स्वयं अपने दरबार में इन उस्ता कलाकारों को सम्मानजनक स्थान प्रदान किया।

बीकानेर शैली का विशुद्ध रूप अनूपसिंह के राज्यकाल में दिखाई देता है। उनके समय के प्रसिद्ध कलाकारों में रामलाल, अलीरजा, हसन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महाराजा अनूपसिंह के समय में उस्ता परिवार ने हिन्दू कथाओं, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी काव्यों को आधार बनाकर सैकड़ों चित्र बनाये। इस समय यह शैली चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। 18वीं सदी में ठेठ राजस्थानी शैली में चित्र बने उनकी रंगत ही अलग है।

बीकानेर शैली में मुगल स्कूल के मिश्रित प्रभाव के फलस्वरूप इकहरी तन्वंगी कोमल ललनाओं का अंकन नीले, हरे और लाल, बैंगनी, जामुनी, सलेटी रंगों का प्रयोग, शाहजहाँ और औरंगजेब शैली की पगड़ियों के साथ ऊँची मारवाड़ी पगड़ियाँ, ऊँट, हरिन, बीकानेरी रहन–सहन और राजपूती संस्कृति की छाप विशिष्ट रूप से देखने को मिलती है। बरसते बादलों में से सारस–मिथुनों की नयनाभिराम आकृतियाँ भी इसी शैली की विशेषता है। यहाँ फव्वारों, दरबार के दृश्यों आदि में दक्षिण शैली का प्रभाव दिखाई देता है।

किशनगढ़ शैली

किशनसिंह ने सन् 1609 ई. में किशनगढ़ राज्य की नींव डाली। राज परिवार पर वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण राधा–कृष्ण की लीलाओं का साकार स्वरूप चित्रण के माध्यम से बहुलता से हुआ।

राजा सावंतसिंह का काल (1748–1764 ई.) किशनगढ़ शैली की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। सावंतसिंह नागरीदास के उपनाम से प्रसिद्ध थे। इनके काव्य प्रेम, गायन, बणी–ठणी के संगीत प्रेम अैर कलाकार मोरध्वज निहालचंद के चित्रांकन ने इस समय किशनगढ़ की चित्रकला को सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा दिया। बणी–ठणी को एरिक डिकिन्सन ने भारत की 'मोनालिसा' कहा है। भारत सरकार ने 1973 ई. में बणी–ठणी पर डाक टिकट जारी किया था।

इस चित्र शैली में पुरुषाकृति में लम्बा इकहरा नील छवियुक्त शरीर, मोती जड़ित श्वेत या मूँगिया पगड़ी, उन्नत ललाट, खंजनाकृत कर्णान्त तक खिंचे विशाल अरुणाभ नयन और नारी आकृति में तन्वंगी, लम्बी, गौरवर्ण, नुकीली चिबुक, सुराहीदार गर्दन, पतली कमर, लम्बी कमल पंखुड़ी सी आँखें चित्रित की गई है। दूर–दूर तक फैली झील, उनमें केलि करते हंस, बतख, सारस, तैरती नौकाएं, केले के गाछ एवं रंग–बिरंगे उपवन, चाँदनी रात में राधाकृष्ण की केलि–क्रीड़ाएं, प्रातःकालीन और संध्याकालीन बादलों का सिन्दूरी चित्रण किशनगढ़ शैली की विशेषताएं हैं। बणी–ठणी अर्थात् राधा के रूप–सौन्दर्य का चित्रांकन इस शैली का विशेष आकर्षण रहा है। यहाँ के प्रमुख रंग सफेद, गुलाबी, सलेटी और सिंदूरी है।

किशनगढ़ शैली के चित्रकारों में नानकराम, सीताराम, सूरध्वज, मूलराज, मोरध्वज निहालचन्द, बदनसिंह, रामनाथ, सवाईराम, लालडी दास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अजमेर शैली

राजनैतिक उथल–पुथल तथा धार्मिक प्रभावों के कारण अजमेर शहर में जहाँ दरबारी एवं सामंती संस्कृति का अधिक प्रभाव रहा, वहीं गाँवों में लोक–संस्कृति तथा ठिकाणों में राजपूत संस्कृति का वर्चस्व बना रहा।

भिणाय, सावर, मसूदा, जूनियाँ जैसे ठिकाणों में चित्रण की परम्परा ने अजमेर–शैली के विकास और

संवर्द्धन में विशेष योगदान दिया। जूनियाँ का चाँद, सावर का तैय्यब, नाँद का रामसिंह भाटी, खरवा से जालजी एवं नारायण भाटी, मसूदा से माधोजी एवं राम तथा अजमेर के अल्लाबक्स, उस्ना और साहिबा स्त्री चित्रकार विशेष उल्लेखनीय है। जूनियाँ के चाँद द्वारा अंकित 'राजा पाबूजी' का सन् 1698 का व्यक्ति–चित्र इस शैली सुन्दर उदाहरण है। यही एक ऐसी कलम रही जिसको हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई धर्म को समान प्रश्रय मिला।

नागौर उपशैली में लकड़ी के कंवाड़ों एवं किले के भित्ति–चित्रण में मारवाड़ शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'वृद्धावस्था' के चित्रों को नागौर के चित्रकारों ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। पारदर्शी वेशभूषा नागौर शैली की अपनी विशेषता है। जैसलमेर शैली का विकास मुख्य रूप से महारावल हरराज, अखैसिंह एवं मूलराज के संरक्षण में हुआ। 'मूमल' जैसलमेर शैली का प्रमुख चित्र है। जैसलमेर शैली की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस पर मुगल या जोधपुर शैली का प्रभाव नहीं है, यह एकदम स्थानीय शैली है।

जोधपुर के दक्षिण में स्थित गोडवाड़ भूखण्ड में घाणेराव एक प्रमुख ठिकाना है। चित्रकार नारायण, छज्जू एवं कृपाराम ने नवीन चित्र शैली का निर्माण किया, जिससे घाणेराव को मारवाड़ की एक उपशैली के रूप में महत्त्व दिया जा सकता है।

3. हाड़ौती शैली

चौहानवंशी हाड़ाओं का प्रभुत्व बूंदी, कोटा और झालावाड़ क्षेत्र में रहा, इसलिए यह हाड़ौती क्षेत्र कहलाया। बूंदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ शैली आदि को हाड़ौती शैली के अन्तर्गत माना जाता है।

बूंदी शैली

चित्रकला की बूंदी शैली मेवाड़ चित्रकला से प्रभावित थी। समय–समय पर बूंदी शैली में ग्रंथ चित्रण एवं लघु चित्रों के माध्यम से इतना चित्रण हुआ कि आज संसार भर के संग्रहालयों में बूंदी शैली के चित्र मिलते हैं। राव शत्रुशाल (छत्रसाल) हाड़ा के काल में इस शैली का विशेष रूप से विकास हुआ। राव छत्रसाल ने प्रसिद्ध 'रंगमहल' बनवाया जो सुन्दर भित्ति चित्रों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। भावसिंह तथा उनके पुत्र अनिरुद्धसिंह ने मुगल शासकों के निर्देशों से दक्षिण भारत के युद्धों में भाग लिया, जिससे बूंदी शैली में दक्षिण शैली का प्रभाव समाविष्ट हुआ। 'चित्रशाला' का निर्माण राव उम्मेदसिंह के समय में हुआ। राव उम्मेदसिंह का जंगली सूअर का शिकार करते हुए बनाया चित्र (1750 ई.) प्रसिद्ध है।

राजा उम्मेदसिंह के काल में बूंदी शैली में नवीन मोड़ आया, जिसमें भावनाओं की सरलता, प्रकृति की विविधता, पशु–पक्षियों तथा सतरंगे बादलों, जलाशयों आदि के चित्रण की बहुलता दृष्टिगत होती है।

बूंदी शैली की आकृतियां लम्बी, शरीर पतले, स्त्रियों के अधर लाल, मुख गोलाकृत और चिबुक पीछे की ओर झुकी छोटी होती है। आकाश में उमड़ते हुए काले कजरारे मेघ, बिजली की कौंध, घनघोर वर्षा, नदी में उठती जल तरंगें, हरे–भरे वृक्ष और उन पर चहकती चिड़ियां, नाचते मयूर एवं कलाबाजी दिखाते वानर तथा पहाड़ की तलहटी में विचरण करते वन्य–जीवों का चित्रण बड़ा ही मनोहारी है। बूंदी शैली में पशु–पक्षी चित्रण को विशेष महत्त्व दिया गया है। स्थापत्य का राजपूती वैभव और श्वेत गुलाबी, लाल हिंगलू, हरा आदि रंगों का प्रयोग बूंदी कलम की विशेषता रही है। रागरागिनी, नायिका भेद, ऋतु वर्णन, बारहमासा, कृष्णलीला, दरबार, शिकार, हाथियों की लड़ाई, उत्सव अंकन आदि शैली के चित्राधार रहे हैं।

इस शैली के चित्रकारों में सुरजन, अहमदअली, रामलाल, श्री किशन और साधुराम मुख्य थे।

कोटा शैली

कोटा चित्रशैली का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने का श्रेय महाराव रामसिंह (1661–1705 ई.) को है। उनके बाद महाराव भीमसिंह ने कोटा राज्य में कृष्ण भक्ति को विशेष महत्त्व दिया, जिसके फलस्वरूप कोटा शैली में वल्लभ सम्प्रदाय का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। कोटा शैली का चरमोत्कर्ष उम्मेदसिंह के

समय में हुआ। कोटा के मुसव्विरखाने के कलाकारों ने भित्तियों पर बड़े–बड़े चित्र बनाने के साथ ही बड़ी–बड़ी वसलियों पर शिकार का समूह–चित्रण कर कोटा–शैली को विशिष्टता प्रदान की। घने जंगलों में शिकार की बहुलता के कारण कोटा शैली में इस समय शिकार का बहुरंगी वैविध्यपूर्ण चित्रण हुआ जो इस शैली का प्रतीक बन गया। इस शैली में नारियों एवं रानियों को भी शिकार करते हुए दिखाया गया है। इस शैली के प्रमुख चित्रकार रघुनाथ, गोविन्दराम, डालू, लच्छीराम व नूर मोहम्मद हैं।

स्त्री आकृतियों का कोटा शैली में अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। पीन अधर, सुदीर्घ नासिका, पतली कमर, कपोल खिले हुए, सुन्दर अलकावलि नारी आकृति को जीवंतता प्रदान करती है। पुरुषाकृति में वृषभ कंधे, उन्नत भौंहें, मांसल देह, मुख पर भरी–भरी दाढ़ी और मूंछें, तलवार, कटार आदि हथियारों से युक्त वेशभूषा तथा मोती जड़ित आभूषण छवि को चार चाँद लगाते हैं। कोटा शैली में हल्के हरे, पीले और नीले रंग का बहुतायत से प्रयोग हुआ है।

झालावाड़–शैली

झालावाड़ के राजमहलों में श्रीनाथजी, राधाकृष्ण लीला, रामलीला, राजसी वैभव के जो भित्ति चित्र मिलते हैं, उनके माध्यम से झालावाड़ शैली का निर्धारण होना अभी शेष है।

4. ढूंढाड़ शैली

आमेर शैली

जयपुर की चित्रण परम्परा पूर्ववर्ती राजधानी आमेर की चित्रशैली के क्रमिक विकास का परिणाम है। आमेर शैली के प्रारंभिक काल के चित्रित ग्रंथों में यशोधरा चरित्र (1591 ई.) नामक ग्रंथ प्रमुख है। इसी समय में बनी रज्मनामा (1588 ई.) की प्रति अकबर के लिये जयपुर सूरतखाने में ही तैयार की गई थी। इसमें 169 बड़े आकार के चित्र हैं एवं जयपुर के चित्रकारों का भी उल्लेख मिलता है। बैराठ के तथाकथित मुगल गार्डन और मौजमाबाद के भित्ति–चित्र भी इस शैली में निर्मित है जिन पर मुगल प्रभाव साफ दिखाई देता है।

आमेर चित्रशैली का दूसरा महत्वपूर्ण चरण मिर्जा राजा जयसिंह (1621–1667 ई.) के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है। मिर्जा राजा जयसिंह ने 'रसिकप्रिया' और 'कृष्ण रुक्मिणी वेलि' नामक ग्रंथ अपनी रानी चन्द्रावती के लिये सन् 1639 ई. में बनवाये थे। इसमें कृष्ण और गोपियों का युगल स्वरूप लोक शैली में चित्रित है। आमेर में ही मिर्जा राजा जयसिंह ने 1639 ई. में गणेश पोल का निर्माण करवाया जो भित्तिचित्रों व अलंकरणों से सुसज्जित हैं।

जयपुर शैली

महाराजा सवाई जयसिंह प्रथम का काल कला की उन्नति की दृष्टि से कई अर्थों में महत्वपूर्ण रहा। उन्होंने अपने राजचिन्हों, कोषों, रोजमर्रा की वस्तुएं, कला का खजाना, साज–सामान आदि को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने हेतु 'छत्तीस कारखानों' की स्थापना की, जिनमें 'सूरतखाना' भी एक है। यहाँ चित्रकार चित्रों का निर्माण करते थे। इसी समय में 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'गीत–गोविन्द', 'बारहमासा', 'नवरस' और 'रागमाला' चित्रों का निर्माण हुआ। महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह के समय चित्र सृजन का केन्द्र (सूरतखाना) आमेर से हट कर जयपुर आ गया। इनके समय में साहिबराम और लालचन्द नामक चित्रकारों ने प्रशंसनीय कार्य किया। साहिबराम ने बड़े व्यक्ति चित्र (आदमकद–पोर्ट्रेट) बनाकर चित्रकला में नयी परम्परा डाली। लालचन्द ने जानवरों की लड़ाइयों के अनेक चित्र बनाये।

सवाई माधोसिंह प्रथम के समय कलाकारों ने चित्रों में रंगों को न भरकर मोती, लाख तथा लकड़ी की मणियों को चिपकाकर रीतिकालीन अलंकारिक मणिकुट्टिम प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। सवाई माधोसिंह प्रथम के समय गलता के मंदिरों, सिसोदिया रानी के महल, चन्द्रमहल, पुण्डरीक की हवेली में कलात्मक

भित्ति चित्रण हुआ। लाल चितेरा महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह तथा महाराजा सवाई माधोसिंह के समय का एक प्रमुख चित्रकार था।

महाराजा सवाई प्रतापसिंह के समय में पचास से भी अधिक कलाकार सूरतखाने में चित्रों को बनाने के लिये नियुक्त थे, जिनमें रामसेवक, गोपाल, हुकमा, चिमना, सालिगराम, लक्ष्मण आदि प्रमुख थे। इस समय राधाकृष्ण की लीलाओं, नायिका भेद, रागरागिनी, बारहमासा आदि का चित्रण प्रधानतः हुआ।

महाराजा सवाई रामसिंह ने कला के विकास के लिये 'महाराजा स्कूल आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स' की सन् 1857 ई. में स्थापना की, जो वर्तमान में 'राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स' के नाम से जाना जाता है।

भित्ति चित्रण, पोथीचित्रण, आदमकद पोट्रेट, लघुचित्रण में जयपुर के कलाकारों ने मुगल प्रभाव को ग्रहण करते हुए राजपूती संस्कृति की नफासत और रंगों की लोक कलात्मकता को बनाये रखा है। बड़े–बड़े पोट्रेट (आदमकद व्यक्ति चित्र) एवं भित्ति चित्रण की परम्परा जयपुर शैली की विशिष्ट देन है। जयपुर के भित्ति–चित्रों की एक विशेष पद्धति है जिसे स्थानीय भाषा में आलागीला, आराइश तथा मोराकसी कहा जाता है। इस पद्धति में चूने के तैयार पलस्तर को घोट कर चिकना कर लिया जाता है तथा इस पर चित्रण किया जाता है। राजस्थान में सर्वप्रथम आलागीला पद्धति का प्रारम्भ आमेर में हुआ जो कच्छवाहा–मुगल संबंधों के प्रभाव का परिणाम था।

जयपुर शैली का प्रभाव ईसरदा, सिवाड़, झिलाय, उणियारा, चौमू, सामौद, मालपुरा जैसे ठिकानों पर भी रहा, जिससे वहाँ ठिकाना पेंटिंग विकसित होती रही।

अलवर शैली

अलवर शैली सन् 1775 ई. में जयपुर से अलग होकर राव राजा प्रतापसिंह के समय में स्वतंत्र अस्तित्व में आयी। उनके शासनकाल में 'शिवकुमार' और 'डालूराम' नामक दो चित्रकार जयपुर से अलवर आये। राजगढ़ के किले के 'शीशमहल' में अंकित भित्तिचित्र उन्हीं के समय में बने। ये भित्तिचित्र अलवर शैली के प्रारंभिक सर्वोत्कृष्ट चित्र हैं।

राजगढ़ के महलों में शीशमहल का चित्रण कराकर बख्तावरसिंह ने यहाँ चित्रकला की शुरुआत की। बलदेव, डालूराम, सालगा एवं सालिगराम उनके राज्य के प्रमुख चितेरे थे। बख्तावरसिंह के समय में बने सैकड़ों चित्र जिनमें नाथों, जोगियों, फकीरों से जंगल में धर्म–चर्चा करते हुये स्वयं महाराज का चित्रण कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

विनयसिंह का अलवर की चित्रकला के उत्कर्ष में वही स्थान है, जो मुगल चित्रकला में अकबर का था। विनयसिंह बलदेव से चित्रकारी सीखते थे। 'गुलिस्तां' का सुलेखन एवं चित्रांकन उनके शासनकाल की एक अनोखी घटना है। इस ग्रंथ को तैयार करने पर उस समय एक लाख रुपये व्यय हुए। इसके चित्र बलदेव व गुलामअली ने बनाये।

बलवन्तसिंह के समय में सालिगराम, जमनादास, छोटेलाल, बकसाराम, नन्दराम आदि कलाकारों ने जमकर पोथी चित्रों, लघुचित्रों एवं लिपटवाँ पटचित्रों का निर्माण किया।

शिवदान सिंह के शासनकाल में कामकला के आधार पर निर्मित सैकड़ों चित्र चित्रकला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। 'नफीरी वादन' का चित्र इस शैली का सुन्दर उदाहरण है। महाराजा मंगलसिंह के शासनकाल में मूलचंद तथा उदयराम ने विशेषतः हाथीदाँत के फलकों पर सूक्ष्म चित्रण किया। महाराजा जयसिंह के शासनकाल में रामगोपाल, रामप्रसाद, जगमोहन, रामसहाय नेपालिया जैसे कलाकारों ने अलवर शैली को अंतिम समय तक जीवित रखा।

अलवर चित्र शैली में ईरानी, मुगल और राजस्थानी विशेषतः जयपुर शैली का आश्चर्यजनक संतुलित समन्वय देखा जा सकता है। इस चित्रशैली में पुरुषों के मुख की आकृति आम की शक्ल में बनाई गयी है। स्त्रियों के कद कुछ ठिगने, उठी हुई वेणियाँ, अत्यधिक परिश्रम से बनाये गये अंग–प्रत्यंग अलवर शैली की

अपनी विशेषता है। वेश्याओं के चित्र केवल अलवर शैली में ही बने हैं। सुन्दर बेलबूँटों वाली वसलियों का निर्माण अलवर शैली की निजी विशेषता है।

उनियारा शैली

नरूका ठिकाने के वंश ने इस शैली के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। रावराजा सरदारसिंह ने धीमा, मीरबक्स, काशी, रामलखन, भीम आदि कलाकारों को आश्रय प्रदान किया। 'राम–सीता, लक्ष्मण व हनुमान' मीरबक्स द्वारा चित्रित उनियारा शैली का उत्कृष्ट चित्र है। उनियारा शैली पर बूंदी और जयपुर का समन्वित प्रभाव दिखाई देता है।

शेखावाटी के भित्ति चित्र

जयपुर शैली के भित्ति चित्रांकन का सर्वाधिक प्रभाव शेखावटी पर पड़ा है। उन्नीसवीं सदी के मध्य से लेकर बीसवीं सदी प्रारंभ तक शेखावाटी के श्रेष्ठीजनों ने विशाल हवेलियां निर्मित कर इस कला को प्रोत्साहन एवं प्रश्रय दिया। नवलगढ़, रामगढ़, फतेहपुर, लक्ष्मणगढ़, मुकुन्दगढ़, मंडावा, बिसाऊ आदि स्थानों का भित्ति चित्रण अनूठा हैं। इन भित्ति चित्रों के कारण शेखावाटी को 'ओपन आर्ट गैलेरी' कहा जाता है।

बड़े–बड़े हाथी और घोड़ों, चोबदारों, चँवर–धारणियों का अंकन, गवाक्षों के दोनों ओर की दीवारों पर अंकन इन हवेलियों की विशेषता है। छज्जे के नीचे टोड़ों के मध्य में चितेरों ने अपनी सूझबूझ के अनुसार मल्लयुद्ध, कुश्ती, दधिमंथन, गौदोहन, विचित्र पशु–पक्षियों, दैवी मिथकों, राक्षसों, कामकला, रागरागिनी, साधुसंतों, लोककथाओं का विशेष अंकन किया है। हवेलियों की बाह्य दीवारों एवं अंदर कथात्मक बड़े–बड़े फलकों का चित्रांकन शेखावाटी शैली की विशेष देन है। शेखावाटी के भित्ति चित्रण में कत्थई, नीले व गुलाबी रंग की प्रधानता है। किन्तु अब इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर का क्षरण हो रहा है। फ्रांस के नदीन ला प्रेन्स ने फतेहपुर की हवेलियों के भित्ति चित्रों के संरक्षण के सन्दर्भ में सराहनीय कार्य कर एक मिसाल पेश की है।

लोककला

आम इंसान के द्वारा बिना किसी ताम–झाम व प्रदर्शन से जब अपनी स्वाभाविक कलाकारी को चित्र, संगीत, नृत्य आदि के रूप में पेश किया जाता है, तो वह लोककला कहलाती है। वास्तव में लोककला ही संस्कृति की वास्तविक वाहक व प्रस्तुतकर्त्ता होती है।

राजस्थान की प्रमुख लोककलाएं

सांझी

सांझी दशहरे से पूर्व श्राद्ध–पक्ष में बनाई जाती है। कुंवारी कन्याएं सफेदी पुती दीवारों पर पन्द्रह दिन लगातार गोबर से आकार उकेरती हैं व उसका पूजन करती हैं। इसे सांझी, संझुली, सांझुली, सिंझी, सांझ के हाँजी, हाँज्या आदि कई नामों से जाना जाता है। कन्याएं गोबर से रेखाओं को उकेरकर उनमें काँच के टुकड़े, मोती, चूड़ी, कौड़ी, पत्थर, पंख, कपड़ा, कागज, लाख, फूल–पत्तियाँ आदि के प्रयोग द्वारा एक दमकती हुई रंगीन चित्ताकर्षक आकृति बनाती हैं।

सांझी को माता पार्वती का रूप मान कर अच्छे वर, घर की कामना के लिए कन्याएं पूजन करती हैं। पहले दिन से दसवें दिन तक एक या दो प्रतीक ही प्रतिदिन बनाए जाते हैं, किन्तु अंतिम पाँच दिन बहुत बड़े आकारों में सांझी की रचना की जाती है, जिसे संझ्या कोट कहते हैं। पहले दिन सूर्य, चन्द्रमा, तारे, दूसरे दिन पाँच फूल, तीसरे दिन पंखी, चौथे दिन हाथी सवार, पाँचवें दिन चौपड़, छठे दिन स्वास्तिक, सातवें दिन घेवर, आठवें दिन ढोलक या नगाड़े, नवें दिन बन्दनवार व दसवें दिन खजूर का पेड़ बनाया जाता है। आखिरी पाँच दिन संझ्याकोट में बीचों–बीच सबसे बड़े आकार में सांझी माता व मानव,

पशु–पक्षी, प्रकृति आदि का चित्रण किया जाता है।

मांडणा

मांडणे दीवारों को अलंकृत करने के लिए बनाये जाते हैं। घर की देहरी, चौखट, आंगन, चबूतरा, चौक, घड़ा रखने का स्थान, पूजन–स्थल आदि पर ये मांडणे अंकित किये जाते हैं। विवाह पर गणेशजी, लक्ष्मीजी के पैर, स्वास्तिक आदि के साथ ही गलीचा, मोर–मोरनी, गमले, कलियां, बन्दनवार, बच्चे के जन्म पर गलीचा, फूल, स्वास्तिक, रक्षाबंधन पर श्रवणकुमार, गणगौर पर गुणों (एक मिठाई) का जोड़, घेवर, लहरिया, तीज पर भी घेवर, लहरिया, चौक, फूल, बगीचा आदि विशेष रूप से बनाये जाते हैं। यदि कोई तीर्थयात्रा कर सकुशल घर लौट आता है तो इस खुशी में 'पुष्कर पेड़ी' तथा 'पथवारी' मांडी जाती है। माण्डणों में त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टकोण, वृत्त आदि आकृतियां भी बनाई जाती हैं। ये मांडणे अत्यन्त सरल होते हुए भी अमूर्त व ज्यामितीय शैली का अद्भुत सम्मिश्रण हैं।

फड़

भीलवाड़ा के शाहपुरा कस्बे में छीपा जाति के जोशी चितेरों द्वारा पट–चित्रण किया जाता है, जिसे राजस्थानी भाषा में 'फड़' कहा जाता है। भीलवाड़ा निवासी श्रीलाल जोशी इस शैली के प्रमुख चित्रकार हैं।

फड़ भोपों के लिए निर्मित की जाती है। ये भोपे फड़ को लकड़ी पर लपेट कर गाँव–गाँव जाकर पारम्परिक वस्त्रों में रावण हत्था या जन्तर वाद्य–यंत्र की धुन के साथ कदम थिरकाते हुए इसका वाचन करते हैं। यह लोक नाट्य, गायन, वादन, मौखिक साहित्य, चित्रकला व लोकधर्म का एक अनूठा संगम हैं। इसमें लोक देवताओं के जीवन के अनेकों प्रसंगों व उनसे संबंधित चमत्कारों को चित्रित किया जाता है। चित्रों में प्रमुखाकृति को सबसे बड़ा बनाया जाता है। अन्य आकृतियां उसके अनुपात में कहीं छोटी बनाई जाती हैं। रंगों का प्रतीकात्मक प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति में सहायक है, जैसे–देवियां नीली, देव लाल, राक्षस काले, साधु सफेद या पीले हैं और सिन्दूरी व लाल रंग शौर्य व वीरता के प्रतीक हैं।

फड़ के लिए सर्वप्रथम मोटे हाथकते दो सूती कपड़ों (रेजी या रेजा) पर गेहूँ या चावल के मांड में गोंद मिला कर कलफ लगाया जाता है। सतह तैयार होने पर उसे घोट कर समतल किया जाता है। इस पर पाँच या सात रंगों से चित्रण किया जाता है। रंगों में गेरू, हिरमिच, जंगाल, हरताल, प्योड़ी, सिन्दूर, हिंगुल, काजल, चूना व नील आदि का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम सिन्दूरी रंग शरीर में, फिर हरा व लाल रंग कपड़ों में, भूरा वास्तु–निर्माण में एवं अंतिम रेखाएँ (खुलाई) केवल काले रंग से की जाती है।

पाबूजी की फड़

पाने

राजस्थान में विभिन्न उत्सवों व त्यौहारों पर देवी–देवताओं के कागज पर बने चित्र (पाने) प्रतिष्ठापित किये जाते है। दीवाल चित्रों के विकल्प के रूप में इन पानों का प्रचलन हुआ है। सस्ते होने के कारण ग्रामीण जन इन्हें खरीद कर समयानुसार प्रयुक्त करते हैं। राजस्थान में गणेशजी, लक्ष्मीजी, रामदेवजी, गोगाजी, श्रवण कुमार, तेजाजी, राम, कृष्ण, शिव–पार्वती, धर्मराज, देवनारायणजी, श्रीनाथजी, नृसिंह आदि के पाने प्रचलित हैं। श्रीनाथजी का पाना इनमें सर्वाधिक कलात्मक है, जिसमें चौबीस शृंगारों का चित्रण होता है।

कावड़

कावड़ बनाना चित्तौड़गढ़ जिले के बस्सी गाँव के खैरादियों का पुश्तैनी व्यवसाय है। यहाँ के पारम्परिक कलाकार मांगीलाल मिस्त्री ने अपनी कावड़–परम्परा को सुरक्षित रखते हुये कई नये प्रयोग किये हैं। इनकी बनी कावड़ें देश–विदेश में कई संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही है। कावड़ जनजीवन की धार्मिक आस्थाओं और विश्वासों से जुड़ी है इसीलिए इसका वाचन–श्रवण कर लोग श्रद्धाभिभूत हो जाते हैं और मनमाना दान करते हैं।

कावड़ एक मंदिरनुमा काष्ठकलाकृति है, जिसमें कई द्वार बने होते हैं। सभी द्वारों या कपाटों पर चित्र अंकित रहते हैं। कथा वाचन के साथ–साथ ये कपाट खुलते जाते हैं और अंत में राम, लक्ष्मण व सीता जी की मूर्तियां दर्शित होती हैं। कावड़ लाल रंग से रंगी जाती है व उसके ऊपर फिर काले रंग से पौराणिक कथाओं का चित्रांकन किया जाता है। इनमें महाभारत, रामायण, कृष्ण लीला के विभिन्न चरित्रों व घटनाओं का विवरण होता है। साथ ही शनि, हनुमान, ब्रह्मा, लक्ष्मी, गरुड़ व लोक–देवताओं जैसे–पाबूजी रामदेवजी, हरिशचन्द्र, गोपीचन्द भरथरी को कथानुसार कावड़ में चित्रित करते हैं।

क्या आप जानते हैं?

गोड़लिया

पशुओं के शरीर पर भी विविध प्रकार की आकृतियों के बड़े कलात्मक दाग दिये जाते हैं। ये दाग चुराये गये पशुओं की शिनाख्त के अतिरिक्त सामान्य पहचान के लिये भी दिये जाते हैं। दागने की यह क्रिया अटेरना तथा दाग के निशान गोड़लिया कहलाते हैं। पशुओं के ये चिन्ह कहीं जाति विशेष के, कहीं अंचल विशेष के तो कहीं विशिष्ट राजघराने के प्रतीक हैं। दागने के इन चिन्हों में प्रकृति के विविध उपादान, धार्मिक आस्थाओं के प्रतीक चिन्ह, मानवाकृतियों, विविध कृषि उपकरण तथा दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के विभिन्न आंकों का समावेश मिलता है। ये दाग लोहे के सरिये, मिट्टी की ढकनी, लोहे पीतल के अक्षर अथवा किसी वृक्ष विशेष की डाली को गर्म कर दागे जाते हैं।

सॉंझी कला : डॉ कहानी भानावत, पृष्ठ 18

मेहंदी

राजस्थान में मेहंदी प्राचीन काल से प्रचलन में है। स्त्रियां व बालिकाएं तूलिका से हाथों में मेहन्दी के बारीक माण्डणे माण्डती हैं। सोजत व मालवा की मेहंदी मारवाड़ में बहुत प्रसिद्ध है। मेहंदी स्त्रियों द्वारा विवाह, सगाई, बच्चे के जन्म, विविध पूजनों व शुभ कार्यों में लगायी जाती है। मेहंदी में विविध प्रकार के अलंकरण बनाये जाते हैं। इनमें दीपावली पर पान, हटड़ी की भाँत, शंख, पगल्या (लक्ष्मी जी के पैर), सोलह दीपक, सुदर्शन, चक्र व मकर संक्रांति पर घेवर, बीजणी, करवा चौथ पर छबड़ी, स्वास्तिक, रक्षाबन्धन पर लहरिया, चीक व शादी पर तोरण, कैरी, सिंघाड़ा, स्वास्तिक, कलश, फूल आदि प्रमुख है।

गोदना

शरीर को सुसज्जित करने की दृष्टि से गोदना गुदवाने की परम्परा का विकास हुआ। किसी तीखे औजार से शरीर के ऊपर की चमड़ी खोदकर उसमें काला रंग भरने से चमड़ी में पक्का निशान बन जाता है जिसे गोदना कहते है। आदिवासी लोगों में गोदने गुदवाने का अधिक चाव रहा है। पर्याप्त धन व आभूषणों के अभाव में शरीर के विविध अंगों पर गोदने गुदवाकर वे अपनी सौन्दर्य–भावना को संतुष्ट करते हैं। स्त्रियां ललाट पर चांद, तिलक, आड़ गुदवाती हैं। आँखों को तीर के समान पैनी दर्शाने हेतु नीचे की पलक के साथ 'सार्या' गुदवाती हैं। धार्मिक प्रतीक जैसे राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान, स्वास्तिक, कलश, ओम व त्रिशूल, पशु–पक्षी, फूल–पत्तियों व वृक्षों, दैनिक कार्यों में काम आने वाली वस्तुएँ गुदवायी जाती हैं।

कोठियाँ

ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारण हेतु कलात्मकता कोठियाँ निर्मित की जाती हैं। कोठियाँ चिकनी मिट्टी की सहायता से बनाकर उन पर विभिन्न प्रकार के जाली, झरोखे, कंगूरे, देवी–देवता, जीव–जन्तु, बेल–बूंटे तथा मांडणें उभारे जाते हैं। इन कोठे–कोठियों में अन्न के अतिरिक्त दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएं जैसे घी, दूध, दही आदि रखे जाते हैं।

वील

पश्चिमी राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में वील रखने की परम्परा पुराने घरों में सर्वत्र दिखाई देती है। वील बांस की पतली–पतली खपच्चियों को धागे से बांधकर घोड़े की लीद मिली चिकनी मिट्टी से बनायी जाती है। यह वील विभिन्न आकार–प्रकार के खाने लिये होती है। इसे सुंदर बनाने के लिये इसमें कई छोटे–छोटे गवाक्ष, जालियां और कंगूरे बनाये जाते हैं। इन पर छोटे–छोटे कांच चिपकाये जाते हैं। इनमें दैनिक उपयोग की वस्तुएं, बर्तन आदि सजाये जाते हैं। जैसलमेर क्षेत्र में एक से बढ़कर एक सौन्दर्यपूर्ण वील देखने को मिलती हैं।

कठपुतली

धागों की सहायता से काष्ठ से बनी पुतलियों (कठपुतली) का कमाल देखते ही बनता है। धागापुतली शैली राजस्थान की देन मानी जाती है। सिंहासन बत्तीसी, पृथ्वीराज संयोगिता और अमरसिंह राठौड़ जैसे खेल इन्हीं कठपुतलियों के द्वारा गाँव–गाँव, घर–घर दिखाये जाते रहे हैं। सन् 1965 में रूमानिया में आयोजित तृतीय अंतर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह में उदयपुर के भारतीय लोककला मण्डल के कलाकारों ने राजस्थान की इस कला में विश्व का प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर तहलका मचा दिया था।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. पिछवई चित्रांकन किस चित्रशैली की विशेषता है?
   (अ) किशनगढ़ (ब) बूंदी
   (स) कोटा (द) नाथद्वारा
2. 'बणी–ठणी' किस चित्रशैली से संबंधित है?
   (अ) किशनगढ़ (ब) कोटा
   (स) मारवाड़ (द) चावण्ड
3. जमनादास, छोटेलाल, बक्साराम व नंदलाल चित्रकला की किस शैली से संबद्ध हैं?
   (अ) झालावाड़ शैली (ब) अलवर शैली
   (स) बीकानेर शैली (द) मारवाड़ शैली
4. जयपुर राज्य के उस कारखाने का नाम बताइए जहाँ कलाकार चित्र और लघु चित्र बनाते थे –
   (अ) तोषाखाना (ब) सुतरखाना
   (स) सूरतखाना (द) जवाहरखाना
5. पक्षियों को महत्त्व देने वाली चित्रशैली है–
   (अ) बूंदी शैली (ब) चावण्ड शैली
   (स) जयपुर शैली (द) देवगढ़ शैली

6. सांझी का संबंध किस देवी से है?
   (अ) सीता (ब) दुर्गा
   (स) ऊषा (द) पार्वती
7. फड़ वाचन का कार्य कौन करते हैं?
   (अ) भोपे (ब) कालबेलिया
   (स) बंजारे (द) सरगडे
8. मांगीलाल मिस्त्री की प्रसिद्धी का क्षेत्र है–
   (अ) रावण हत्था (ब) कावड़
   (स) पूंगी (द) शहनाई
9. फड़ से संबंधित श्रीलाल जोशी किस जिले के निवासी है?
   (अ) भीलवाड़ा (ब) सीकर
   (स) जयपुर (द) चूरू
10. सोजत किसके लिए प्रसिद्ध है?
   (अ) गुड़ (ब) कम्बल
   (स) कावड़ (द) मेहंदी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. चित्रशाला का परिचय दीजिए।
2. बूंदी शैली की कोई दो विशेषता बताइये।
3. राजस्थान में उपलब्ध सर्वाधिक प्राचीन चित्रित ग्रंथ कौनसा है?
4. 'निसारदीन' कौन था?
5. 'पिछवाईयों' से आप क्या समझते हैं?
6. सुमेलित करें –

लोककला	संबंधित सामग्री
1. पाने	लकड़ी
2. फड़	रंग
3. मांडणा	कपड़ा
4. कावड़	कागज

7. सांझी पूजा किस समय की जाती है?
8. गोड़लिया से आप क्या समझते हैं?
9. 'सार्या' से आप क्या समझते है?
10. 'मांडणा' के चार विषयों के नाम लिखिये।
11. सांझी पूजा कितने दिनों तक की जाती है?
12. 'पाने' क्या हैं?
13. ग्रामीण अंचल में 'कोठियाँ' किस उपयोग में आती हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. किशनगढ़ चित्रकला शैली की दो मुख्य विशेषताएं बताइये।

2. नाथद्वारा चित्रशैली की विशेषताएं बताइए।
3. राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों का वर्गीकरण कीजिये।
4. राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
5. कठपुतली कला पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. चित्रकला की 'मारवाड़ स्कूल' पर एक विस्तृत आलेख लिखिये।
3. फड़ कला पर एक लेख लिखिये।
4. कावड़ के विभिन्न विषयों का उल्लेख करते इस कला पर प्रकाश डालिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. अपने आस–पास के क्षेत्र में गोदना गुदवाये व्यक्तियों से मिले तथा गोदने के विभिन्न विषयों की सारणी तैयार करें।

कल्पना करें :

1. आप एक लड़की हैं, पंद्रह दिन की अपनी सांझी पूजा के बारे में अपनी सहेलियों को बताइये।